VISION AHEAD
(An Online Peer Reviewed/ Refereed Bilingual International Journal of Multidisciplinary Studies)
VOLUME 1, JAN-DEC 2023 **ISSN:**

शहर की अवधारणा और ज्ञानेन्द्रपति की कविता

कुमार मंगलम
सहायक अध्यापक,
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सारांश

हिंदी कविता के लिए शहर अथवा गाँव क्यों आवश्यक है? कोई भी रचना नगर अथवा ग्राम्य –संस्कृति को उसके सम्पूर्णता में कैसे रेखांकित कर सकता है? ये अपने परिसीमाओं और जीवन–शैली में अभिव्यक्त होते हैं। ये जन–जीवन और मनःमस्तिष्क पर हावी है, और बड़ी तेजी से बदलाव की चुनौतियों को उछालते है। हिंदी में गाँव के प्रति एक अतिरिक्त और कुछ हद तक रूमानी आग्रह रहा है, और शहर को हेय दृष्टि से या नकारात्मक रूपक के रूप में ही देखा जाता रहा है। इन बिन्दुओं के आलोक में इस आलेख में ज्ञानेंद्रपति की कविताओं में कविता और नगर व कविता और गाँव के सम्बन्ध को रेखांकित करने की कोशिश की गयी है।

हिंदी के कवि ज्ञानेंद्रपति अपने सुदीर्घ काव्य–यात्रा में शहर और गाँव के जैविक और अविभाज्य सम्बन्ध को अपनी काव्य सृजन के लिए उपयुक्त मानते हैं। इस आलेख में उनकी कविता के उन्हीं चिन्हों को तलाशने की कोशिश की गयी है। ज्ञानेन्द्रपति के कवि–कर्म में देखे–अनदेखे जीवन–क्षेत्रों में घूमने की ललक शुरू से मौजूद रही है। वे सुगम के सहचर न होकर जीवन के उबड़खाबड़ में भटकने और देखे हुए दृश्य के बाहर और रह गए दृश्य के अद्भुत चितेरे हैं। उनकी कविताओं में आया हुआ नगर–चित्र और ग्राम्य–जीवन एकहरा नहीं बल्कि जीवन के सम्पूर्ण विन्यास को पकड़ने की सजग और सयास कोशिश है।

मुख्य शब्दः *गांधी, नेहरू, अम्बेडकर, ज्ञानेन्द्रपति, निराला, देवीप्रसाद मिश्र, शहर, गाँव, कलकत्ता, बनारस, पटना, झारखण्ड, भूमण्डलीकरण, प्रेम, राजनीति, हिंदी कविता इत्यादि*

"For me, India begins and ends in the villages"[1] -Gandhi
"The old indian social structure which has so powerfully influenced our people...was based on three concepts: the autonomous village community: caste; and the joint family system"[2] - Neharu
"The Hindu village is the working plant of the Hindu social order. One can see there the Hindu social order in operation in full swing."[3] –Ambedkar

आजादी के बाद के भारत ने अपने बनने की प्रक्रिया में सबसे अधिक स्थान नेहरू के विचारों को दिया और आजादी के स्वप्नदर्शी अन्य विचारकों यथा गाँधी और आम्बेडकर के विचार नेहरूवियन मॉडल में उपेक्षित होते चले गए। आम्बेडकर ने गाँव को अज्ञानता का महाकूप और संकीर्ण मानसिकता का गढ़ कहा था। "गाँव अज्ञानता का महकूप और संकीर्ण मानसिकता का गढ़ है। गाँव गणराज्य और हिन्दू साम्राज्यवाद का प्रतीक तथा दलितों के शोषण की व्यवस्था है। असमानता तथा शोषण की बुनियाद पर खड़े गाँव में लोकतंत्र सम्भव ही नहीं है।"[4] वहीं गांधी का मानना है कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। "भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। गांधी गाँव के जीवन में भरतीय सभ्यता का सूक्ष्म रूप देखते थे। गांधी जी हिन्दू धर्म में सुधार के समर्थक थे और गाँव गणराज्य की कल्पना से भारत को पश्चिमी आधुनिकता और अतिविकसित तकनीकी के दुष्परिणामों से बचाना चाहते थे।"[5] गांधी गाँवों में भारतीयता की मूल आत्मा को देखते थे और आधुनिकता की अंधी दौड़ से उत्पन्न मूल्यों के गिरावट को बचाने वाले संस्थानिक ढ़ांचा वे गाँव को समझते थे। नेहरू गाँव को सामंती अवशेष और सामंती जीवन का निशानी मानते थे। "नेहरू आधुनिकता के पक्षधर थे तथा गाँव–देहात को पिछड़ेपन की निशानी मानते थे। गाँव औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के लिए केवल कच्चा माल उपलब्ध कराने का एजेंट मात्र बना रहा।"[6] नेहरू ने आजादी के बाद जो भारत के विकास का स्वप्न देखा वह शहरों में ही फलीभूत होने वाला स्वप्न था। उन्होंने गाँवों को विकसित करने के लिए कई योजनायें तो बनाई, लेकिन बिचौलिये के आने से वे योजनायें धरातल पर उतर न सकीं, उधर शहरों में नेहरु मॉडल के चलते उद्योग–धंधे आदि ने खूब तरक्की की।

इस औद्योगीकरण और शहरीकरण के दौड़ में गाँव सिर्फ कच्चा माल निर्यातक बन कर रह गया। उदारीकरण के बाद तो गाँव शहरों में विलीन होने लगा, कुछ सेज के आसपास, कुछ नगर–निगम तो कुछ शहरों–कस्बों के विस्तार में गाँव भेट चढ़ गए। कुछ गाँवों के नामो–निशान विस्थापन की वजह से, उद्योग के लिए कच्चा माल उगाहने की वजह से तो कुछ बांध, जल–विद्युत परियोजना इत्यदि की वजहों से मिट गया और फिर इन गाँवों का पुनः पर्यावास हो न सका। गाँव में इस शहरीकरण के दबाव की वजह से एक नई सामाजिकता का उदय होता है, जहाँ परम्परा का क्षरण और बेहद खराब और मिलावटी संस्करण के साथ आधुनिकता मौजूद है। नई आर्थिक नीति, जोत के खेत कम होते गए, खेती से पलायन, शहरीकरण के चलते सिर्फ गाँवों की अर्थव्यवस्था ही नहीं उसके सांस्कृतिक रूप में भी तेजी से क्षरण हुआ है। गाँवों की सामूहिकता में बदलाव धीरे–धीरे अजनबीपन के रूप में लक्षित होने लगा है। अब गाँवों में भी अलगाव और टूटन दिखने लगा है। सामाजिक विसंगति के विद्रूप चेहरे का वासस्थान गाँव भी है। इन्टरनेट और टीवी के माध्यम से बाजार की पहुँच अब गाँवों में भी है, बाजार ने गाँव के मूल्यों पर भी हमला बोला है, बाजार के साथ गाँव में कितनी विद्रूपता पहुँची है, इसकी बानगी आज के गाँवों में देखा जा सकता है, अब गाँव में सिर्फ स्त्रियाँ, बूढ़े और बच्चे ही रहते हैं। गाँव के त्योहारों में जवान अतिथि की तरह आते हैं और परदेशी की तरह वापस शहर लौट जाते हैं। ठीक इसी तरह गाँवों में जैसे–जैसे शहर का अतिक्रमण होता गया वैसे ही शहरों में गाँवों का भी अतिक्रमण होता गया है। शहरों में जो ग्रामीण आये, वे तुरंत ही शहराती नहीं हो गए, उनके साथ गंवई मूल्य आज भी मौजूद है। शहर का मध्यवर्ग जो अभी पूरी तरह से शहराती नहीं हुआ है, उसमें अभी भी भीतर कहीं गंवई मूल्य मौजूद है। अब स्थिति यह है कि गाँव न शहर हुआ और ना ही शहर के सारे लोग शहराती हो पाए। आजादी के सत्तर साल बाद हमने एक ऐसे कंपोजिट कल्चर को जन्म दिया जो एक साथ अधुनातन और पुरातन दोनों है। शहर में युवाओं के लिए चमक–दमक, रोजगार, शिक्षा और स्वास्थ्य के सुविधा का आकर्षण है है तो गाँव में गाँव की सांस्कृतिक इकाई और मूल्य को लाश की तरह अपने बूढ़े काँधे पर ढ़ोने, उसके टूटते जाने और गाँव में सिर्फ बच्चे और बूढों के रह जाने का क्रूर यथार्थ है। गाँव अब ग्रामीण विस्थापन, गंवई मूल्यों के बिखराव, मध्यवर्गीय अभाव और दुश्चिंताओं के साथ–साथ दुर्धर्ष जिजीविषा का भौगौलिक स्थान है।

हिंदी कविता के लिए शहर अथवा गाँव क्यों आवश्यक है? कोई भी रचना नगर अथवा ग्राम्य –संस्कृति को उसके सम्पूर्णता में कैसे रेखांकित कर सकता है? ये अपने परिसीमाओं और जीवन–शैली में अभिव्यक्त होते हैं। ये जन–जीवन और मनःमस्तिष्क पर हावी है, और बड़ी तेजी से बदलाव की चुनौतियों को उछालते है। हिंदी में गाँव के प्रति एक अतिरिक्त और कुछ हद तक रूमानी आग्रह रहा है, और शहर को हेय दृष्टि से या नकारात्मक रूपक के रूप में ही देखा जाता रहा है। हिंदी कविता में शहर एवम् गाँव के द्वंद्व का स्वर अमूमन अज्ञेय की कविता साँप और पन्त की कविता भारतमाता ग्रामवासिनी से निर्मित होता है। तथापि समकालीनता का बहुलांश स्वर अज्ञेय की बहुचर्चित कविता 'साँप' कविता के इर्द–गिर्द ही घूमता प्रतीत होता है।

"साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ––(उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डँसनाकृ
विष कहाँ पाया?"[7]

आलोचक कृष्णमोहन साँप कविता पर विचार करते हुए लिखते हैं, "जैसा कि जाहिर है इसमें नागर जीवन और आधुनिक सभ्यता के बारे में कवि अपने विचार व्यक्त कर रहा है। उसका खयाल है कि किसी को काट लेने और उसमें जहर प्रवाहित कर देने का गुण–धर्म नगरों की विशेषता है, और अन्यत्र यह दुर्लभ है। प्रत्यक्ष तौर पर कवि साँप को संबोधित करते हुए पूछता है कि तुमने डँसने की कला कहाँ सीखी और इस क्रिया को घातक बनाने वाला जहर तुम्हें कहाँ से मिला। इस तरह शहर, और आधुनिक सभ्यता के साथ कवि साँप को समीकृत करता है, और उसके प्रति हमारे भय को ताजा करता है।"[8] अब इस कविता पर गौर करें तो नगर के चरित्र के सामने एक स्थाई प्रतिपक्ष के तौर पर गाँव की उपस्थिति मौजूद है। यानी जो नगरों का गुण–धर्म है उसके उलट गुण–धर्म की चीज गाँवों में मौजूद है। छायावादी कवि सुमित्रानंदन पन्त ने भारत को ग्रामवासिनी कहा है।

"भारतमाता ग्रामवासिनी" और "अहा! ग्राम्य–जीवन भी क्या है?" से ही गाँव अपेक्षाकृत महिमामंडित होता रहा। गाँव स्मृतियों का, मनुष्यता का, सहजता का प्रतीक बना रहा। जबकि गाँव का यथार्थ जातिवाद, घृणा, कुंठा, असुविधा, दमन और उत्पीडन के केंद्र के रूप में बन गया।

भारतीय शहरों के राजनैतिक और सांस्कृतिक रूपक को उपरोक्त बातों के आलोक में देखा जा सकता है, जबकि कविताओं में अभिव्यक्त नगर–चित्र बहुधा भिन्न होते हैं। यहाँ शहरों के साथ गाँवों की बायनरी अनिवार्य घटक के रूप में शामिल होता है, इन्हें अलग कर के नहीं देखा जा सकता। शहर और गाँव अनिवार्यतः एक दुसरे से अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं और एक दुसरे के पूरक हैं। राजेश जोशी लिखते हैं, "कविता का नगर चाहे बहुत भिन्न हो, उसमें कल्पना का तत्व बहुत अधिक या कम हो, लेकिन बाहर स्थित नगर से उसकी शक्ल थोड़ी–बहुत मिलती है। जब भी वास्तविक शहर शब्दों में रूपांतरित होता है, उसका चेहरा–मोहरा वही नहीं रहता जो उसका वास्तविक चेहरा है। यह शहर का पुनर्रचित चेहरा है। यह कविता का नगर है।"[9]

ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं में विभिन्न शहरों के विभिन्न चित्र मौजूद हैं। इनकी कविताओं में प्रमुखता से पटना, कलकत्ता और बनारस प्रमुखता से स्थान पाते हैं। "शब्द लिखने के लिए ही यह कागज बना है" में ज्ञानेन्द्रपति की कविता का मुहावरा विराट जीवन से जीवन–द्रव्य लेकर एक विशाल कैनवस की निर्मिति करता है। 'ट्राम में एक याद' जैसी कविता में चेतना पारिख और 'बनानी बनर्जी' में जहां बनानी बनर्जी से आत्मिक मुलाकातें हैं उन्हीं कविताओं में इन मुलाकातों के साथ उनकी राजनीतिक पक्षधरता बहुत स्पष्ट और मुखर होकर हमारे सामने विस्फारित रूप में सामने आती है। 'ट्राम में एक याद' कविता 'चेतना पारीक की याद' नहीं है, वह कलकत्ते की याद है, उस कलकत्ते की जो वाम राजनीति और क्रांति का केंद्र है। याद है, इसलिए रिक्ति है वहाँ और वह रिक्ति प्रेम की नहीं क्रांति की है। विद्रोह के बाद का सूनापन इस कविता में वह रोमानियत भरती है कि बार–बार पाठक उसे प्रेम कविता में रिड्यूस कर देता है।

"इस महावन में फिर भी एक गौरैये की जगह खाली है
एक छोटी चिड़िया से एक नन्हीं पत्ती से सूनी डाली है
महाननगर के महाट्टहास में एक हँसी कम है
विराट् धक्–धक् में एक धड़कन कम है कोरस में एक कंठ कम है
तुम्हारे दो तलवे जितनी जगह लेते हैं उतनी जगह खाली है
वहाँ उगी है घास वहाँ चुई है ओस जहाँ किसी ने निगाह तक नहीं डाली है।"[10]

'ट्राम में एक याद' कलकत्ता की याद है, चेतना पारीक की याद नहीं, इसी वजह से वे कलकत्ता का अविकल प्रस्तुति देते हैं–

"उतना ही शोर है इस शहर में वैसा ही ट्रैफिक जाम है
भीड़–भाड़ धक्का–मुक्का ठेल–पेल ताम–झाम है
ट्यूब रेल बन रही चल रही ट्राम है
विकल है कलकत्ता दौड़ता अनवरत अविराम है।"[11]

'बनानी बनर्जी' कविता प्रेम की नहीं गहन राजनैतिक बल्कि क्रांति की कविता है। बनानी बनर्जी द्वारा शरद बाबू से प्रार्थना कर अपने जीवन की कहानी कहलवाने का आग्रह हो या रविन्द्र की शब्दावली में सजल मेघ और उज्जवल रौद्र की आकांक्षा प्रेम की नहीं क्रांति की कहानी कहती है। यहाँ ज्ञानेन्द्रपति प्रेम की चाशनी में क्रांति के, मनुष्यता के असफल होने के अवसाद की कहानी कहते हैं।

ज्ञानेन्द्रपति की आरंभिक कविताएँ जो उनके आरंभिक संग्रह भिनसार में संकलित हैं, उनमें पटना और कलकत्ता तथा बाद के संग्रहों में बनारस के नगर–चित्र मिलते हैं। ज्ञानेन्द्रपति के नगर में पर्यावरणीय चिंता के साथ–साथ नगर के अधिक मानवीय सरोकार को बचाए रखने की चिंता भी मौजूद है। एक छोटी कविता से इसे समझा जा सकता है–

"नदी के किनारे नगर बसते हैं
नगर के बसने के बाद

नगर के किनारे से
नदी बहती है।"[12]

इस संकलन में पटना और कलकत्ता का नगर–चित्र बहुतायत में है, लेकिन इस नगर–चित्र में गाँव से एक आपसदरी का सम्बन्ध मौजूद है। यानी नगर की चिंताओं में ज्ञानेन्द्रपति गाँव से दूर नहीं होते बल्कि वे उस अविभाज्यता की तलाश करते हैं, जिसमें नगर का अस्तित्व गाँव से जुड़ा हुआ है। भिनसार में एक कविता है–पटना का गोलघर, इस कविता में किसान के स्वप्न और आकांक्षा का जो मार्मिक चित्रण किया है, वैसा चित्रण आगे चलकर देवीप्रसाद मिश्र की कविता में दिखता है। देवीप्रसाद मिश्र की कविता है–

"भूमिहीन किसान जब
मकबरे में घुसा तो
अंदाजने लगा यह
कितने रकबे में है।"[13]
ज्ञानेन्द्रपति की कविता को अब देखें–
"गंगा से आया किसान
थपथपाता है इसका विशाल पेट
डरते–डरते
और हिसाब गुनता है कि इसमें
आखिर कितना आता होगा अनाज
इसको भरने में कितने गाँवों के फेफडें हँफते होंगे
कि बीच में ही घबरा कर
दिखाता है अपने बच्चे को
देखो, गंगा पार वहाँ उस कोने पर
है अपना गाँव
उस ओर जिधर
जा रहा है स्टीमर का धुआँ।"[14]

भिनसार शीर्षक संकलन में पटना में घटित हो रहे सम्पूर्ण क्रांति और उसके असफलताओं को लेकर लिखी गयी कविता भी उल्लेखनीय है। इन कविताओं को पढ़ते हुए ज्ञानेन्द्रपति की राजनीतिक प्रतिबद्धता को साफ–साफ समझा जा सकता है। 15 अगस्त, 1972, पटना रू 18 मार्च, 1974, पटना रू 18 मार्च, 1975, जे पी की प्रतिमा, अगस्त 1986, पटना रू गांधी मैदान इत्यदि कविता में जे पी आन्दोलन के केंद्र पटना की अनेक छवियाँ विन्यस्त है, इसमें रैलियां हैं, छात्र आन्दोलन है, एक असफल क्रांति का देखती आँख की दिखावनी है। ज्ञानेन्द्रपति एक कवि के रूप में नहीं बल्कि एक आंदोलनकारी के रूप में इन सब में शामिल हैं। जो परिवर्तन की आकांक्षा के साथ है।

"दूर अभी भी गोलियाँ चल रही हैं
और मेरी मुट्ठी में वह पत्थर है जिसे मैं जानता हूँ कहाँ मारना है
आखिरी बार
मेरी मुट्ठी में यह कविता नहीं काला पत्थर है
बिल्कुल ठीक जगह फेंके जाने को तना
इस पर उगी हुई खून की लकीरें बेचौन नसों की तरह धड़कती हैं।"[15]

बड़े शहरों की तन्हाई और छोटे शहरों की गुंडागर्दी दोनों के बीच बनारस अपने आप में एक कस्बाई मिजाज को पालने वाला शहर है। बनारस में बड़े शहर की तन्हाई बहुत कम या परोक्ष रूप में मौजूद है और गुंडागर्दी के स्वरूप यहाँ बदलते रहे हैं लेकिन इसके बीच यह जितना शहर है, उतना ही गाँव या कस्बा भी है। भारतीय सभ्यता का एक लघुत्तम रूप बनारस में देखा जा सकता है। भारतीयता की अवधारणा एक संश्लिष्ट अवधारणा है, इसके बनने में विविध प्रकार के मत–मतान्तरों का योग रहा है। बनारस का धर्म, शिक्षा, व्यापार, राजनीति,

आदि से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस वजह से इसका इतिहास बहुआयामी है। कई बार इतिहास इतना वस्तुनिष्ठ नहीं होता कि वह यथार्थ के संघनित तहों को रेखांकित कर सके। जब इतिहास के पन्ने से कुछ छुट रहा होता है अथवा जो इतिहास में सम्मिलित नहीं हो पाता है उसे साहित्य अपने पन्नों में जगह देता है। ज्ञानेन्द्रपति की बनारस विषयक कविताएँ वैकल्पिक स्पेस का सृजन करती है। इसमें इतिहास, पुराण, स्थापत्य, स्मृति, त्रासदी, उन्मुक्त परिहास है। इसमें बेचौन संघर्ष है और सुकून की अड्डेबाजियाँ भी है। अतीत मोह है तो नई चुनौतियों से उलझता–जूझता विमर्श भी है। गंगा–बीती में पर्यावरणीय चिंताओं के साथ–साथ गलियों–गालियों का जनपद बनारस एक साथ अभिव्यक्त हुआ है। बनारस एक साथ प्राचीन और आधुनिक दोनों है। इसी वजह से इसमें एक द्वंद्व है। बनारस के रचाव की जब भी बात होगी तो उस परम्परा की बात होगी जो अतीत का प्रगतिशील या अग्रगामी हिस्सा है। इसी वजह से ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं में विगत से वर्तमान के अंकुरण की सतत प्रक्रिया से उपजा द्वंद्वात्मक निषेध जैसी ध्वनि प्रमुख है। आलोचक जयप्रकाश 'गंगातट' पर लिखते हुए इस ओर संकेत करते हैं, "ज्ञानेन्द्रपति के प्रेक्षण की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे किसी दृश्य को फोटोग्राफिक प्रेक्षण की तरह निर्विकार या प्रकृतवादी तरीके से नहीं, बल्कि उसकी समूची आन्तरिक द्वंद्वात्मकता में पकड़ते हैं। इस प्रयत्न में दृश्य के परस्पर पूरक या विरुद्धार्थी आशयों को अगल–बगल रख कर उनके बीच उत्पन्न विसंगति को उभार देते हैं। यह विसंगति अपने आप एक काव्यात्मक आशय बन जाती है। इस तरह वे विलोम प्रत्ययों के युग्म कविता का कथ्य निर्मित करते है।"[16]

हेरोडोटस ने कहा है कि, "भूगोल को एतिहासिक और इतिहास को भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में ही पढ़ा जाना चाहिए।"[17] ज्ञानेन्द्रपति अपनी एक कविता से अपनी स्थिति को भी साफ कर देते हैं। वे 'बीच कहीं' शीर्षक कविता में अपनी उपस्थिति को रेखांकित करते हैं–

"मल्लाह और घाटिया पुरोहित
मचलियाँ और घोंघे
गंगा
किन्हीं को जीविका देती है
किन्हीं को जीवन
इन्हीं के बीच कहीं
है एक कवि
शब्दांकता बैठा गंगतीर।"[18]

बनारस को रचते हुए सीधे गंगा को अथवा गंगा–घाट को लेकर कुछ कविताएँ संबोधित है। इन कविताओं में गंगा और गंगा–घाट की चमक–दमक के पीछे के सच को रेखांकित करती है। 'मानव–चित्त के अकूत कलुष से करिखायी' में और 'उसका सूर्य होगा उत्तरायण' में गंगा की स्थिति बिल्कुल साफ है। इन कविताओं में आप शर–शैय्या, भेक–भैय्या, सूरजसोखी इत्यादि कविताओं को रख सकते हैं।

"मोक्षदायिनी गंगा अब मोक्षकामिनी
नाले में बदली निर्वाक् बही जाती है बहावहीन
मानव–चित्त के अकूत कलुष से करिखायी
आह! कितनी मकर संक्रन्तियाँ बीतेंगी कि उसका सूर्य होगा उत्तरायण, शर–शैय्या से"[19]

कुछ नगर–चित्र का है, जो बनारस से सम्बंधित है। इन कविताओं में बनारस शहर की छवियाँ हैं। जैसे बड़ा दिन–लम्बी रात, अड़ी, आजाद पार्क इत्यादि। एक कविता है 'एक ह्रस्व हुई दीर्घिका' इस कविता में प्राचीन बनारस के इतिहास को पढ़ा जा सकता है। बनारस किसी दीर्घिका(तालाब) की ही भांति सिमटता चला जा रहा है। किसे ख्याल है जो आज का मैदागिन है कभी वहां मन्दाकिनी नाम की तालाब हुआ करती थी, अब उसके चिन्ह भी देखने को नहीं मिलता है। प्रिंसेप की तस्वीरों को देखें तो शायद पता चले।

"एक ह्रस्व हुई दीर्घिका है–
मन्दाकिनी का मैदागिन–अवशेष–

कम्पनीबाग–नगर मध्य के म्युन्सिपल पार्क–का केंद्रबिंदुबीती
वह जो काई–कवलित नन्हा–सा तालाब
कि मानो बड़ा–सा एक चहबच्चा
कि जो है विख्यात मैदागिन चौराहे का नाम–मूल–
काल–कुतरी
एक ह्रस्व हुई दीर्घिका है।"[20]

'गंगातट' और 'गंगा–बीती' ज्ञानेन्द्रपति की सर्वाधिक चर्चित कृतियां हैं। इन दोनों कृतियों में गंगा और बनारस केंद्र में हैं। एक तरह से गंगा बीती, गंगातट का विस्तार है। इन दोनों संग्रहों में ज्ञानेन्द्रपति का कवि–द्रष्टा विस्तार पाता है। हिंदी क्षेत्र में राजनीति का प्रभुत्व इतना अधिक है कि सबकुछ राजनीति के वृत्त के आसपास ही सिमटने लगता है। यहाँ तक कि कविता और विचार पर भी राजनीति हावी है। ऐसे में कवि ज्ञानेन्द्रपति पर्यावरण विमर्श को पर्यावरणीय चिंता के साथ कविता के केंद्र में लाते हैं। फिर गंगा या बनारस कोई इकाई नहीं एक प्रतिनिधि पाठ के रूप में तब्दील होकर हमारे बीच एक बड़े चिंता के तौर पर उपस्थित होते हैं। प्रकृति अपने सामान्य अर्थ में मानवेत्तर ही नहीं मनुष्य के साहचर्य के साथ इन कविताओं में मौजूद है। हालाँकि इन कविताओं में राजनीति का स्वर भी मुखरता और प्रतिबद्धता के साथ साथ चलता है। ज्ञानेन्द्रपति उपभोग के लक्ष्मण रेखा का शिनाख्त करते हैं और उसका एक गांधीवादी रूपक इन कविताओं में तलाशते हैं, जिनके गुणसूत्र हमारे औपनिषदिक मानस में पहले से मौजूद है।

'गंगातट' की कविताओं को पढ़ते हुए आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने सैलानी की दृष्टि से देखे गए बनारस की बात करते हैं तो राजेश जोशी इन कविताओं में ज्ञानेन्द्रपति की दूसरी नागरिकता की कविता बताते हैं किन्तु गंगा–बीती की कविताओं में ज्ञानेन्द्रपति नामवर सिंह की स्थापना सैलानी दृष्टि को अपने गहन पर्यवेक्षण दृष्टि से और राजेश जोशी की स्थापना दूसरी नागरिकता को प्राथमिक नागरिकता से अपदस्थ कर देते हैं। गंगा–बीती की पहली ही कविता नौका–विहार इस अपदस्थ करने का सबसे सबल उदहारण है। यहाँ सैलानी–दृष्टि और नागरिक कर्तव्य से अधिक एक सजग कवि की चिंता अधिक दिखती है। वे इस कविता में शहर के सहृदय और कुलीन–शालीन नागरिकों को भी नहीं बख्शते। भारतेंदु ने भारत–दुर्दशा पर भारत भाइयों को रोने के लिए आह्वान किया था लेकिन यहाँ गंगा–दुर्दशा में ज्ञानेन्द्रपति किसका आह्वान करें, सहृदय तो नाले में तब्दील होती गंगा में बुढ़वामंगल मनाने में व्यस्त हैं। ज्ञानेन्द्रपति के पास रोने का विकल्प नहीं है, वे करुणा–सिक्त–मन से दर्ज कर रहे हैं, बनारस को, गंगा को और अपने समय को–

"बीमार है और तीमारदार के बगैर, इससे क्या
नदी का भी मन करता हैकृनहाये
करियाये पानी वाली नदी
उजियार रातों में
चाँदनी से नहाती है
उस समय नौका–विहार करते घूमते हैं
नगर के सुरुचि–संपन्न लोग
अघायी दिखती सुरुचि से ढँके भोग–भूखी क्रूरता
कि नदी मर रही है और वे बजरे पर बुढ़वामंगल मना रहे हैं
शहर के कुलीन–शालीन, शहर के सहृदय।"[21]

ज्ञानेन्द्रपति इस कविता में एक सूचना देते हैं गंगा मर रही है, वहीँ गंगातट में शामिल कविता नदी और साबुन को याद करें, जहाँ नदी एक साबुन की टिकिया से हार जाती है। यह अंतर है गंगातट और गंगाबीती की कविताओं में। यह सिर्फ देखने का अंतर नहीं है, यहाँ कवि नदी के साथ–साथ जी रहा है।

"आह! लेकिन
स्वार्थी कारखानों का तेजाबी पेशाब झेलते
बैंगनी हो गयी तुम्हारी शुभ्र त्वचा

हिमालय के होते भी तुम्हारे सिरहाने
हथेली–भर की एक साबुन की टिकिया से
हार गईं तुम युद्ध"[22]

ज्ञानेन्द्रपति की गंगा विषयक और बनारस विषयक कविताओं के विस्तार की बानगी गंगातट में शामिल 'कबिरा खड़ा बाजार में' और गंगाबीती में शामिल 'ह्रस्व हुई दीर्घिका' में देखें–

"लहरतारा!
गंगा का गुप्त संगी!
कभी मीलों फैले निर्मल सरोवर का ज्लावाशेष
अब एक बड़ी–सी गंदी गड़ही
जिसकी जर्जर देह में जलात्मा सड़ रही"[23]
और
एक ह्रस्व हुई दीर्घिका है–
मन्दाकिनी का मैदागिन–अवशेषकृ
कम्पनीबागकृनगर–मध्य के म्युनिसिपल पार्ककृका केंद्रबिंदु
वह जो काई–कलवित नन्हा–सा तालाब कि मानो बड़ा–सा एक चहबच्चा
कि जो है विख्यात मैदागिन चौराहे का नाम–मूलकृ
काल–कुतरी
एक ह्रस्व हुई दीर्घिका है।"[24]

अब अगर सिर्फ सैलानी और दूसरी नागरिकता की दृष्टि होती तो लहरतारा अथवा मैदागिन के इतिहास में दिलचस्पी नहीं होती। सैलानी किसी दृश्य को उपर से देखते हैं लेकिन इतिहास के बोझिल पन्नों की यात्रा दीवानगी से ओत–प्रोत इतिहासकार या शोधार्थी ही करता है। ज्ञानेन्द्रपति यहाँ अपनी कविताओं में शहर का एक वैकल्पिक इतिहास लिख रहे हैं। गंगातट और गंगाबीती में मौजूद शहर दरअसल भूमंडलीकरण के बरक्स लोक का प्रतिरोध है जिसे ज्ञानेन्द्रपति बनारस के माध्यम से दर्ज कर रहे हैं। बनारस यहाँ विकल्प है। बनारस एक शहर नहीं प्रतीक है प्राचीन सभ्यता का, नगर का, कस्बा का, लोक का, जीवन का। यह सनातन प्रतिपक्ष है। ज्ञानेन्द्रपति बनारस को कविता के लिए चुनते हैं। बनारस बहाना है, वे बनारस के बहाने जो कह रहे हैं वह यह है–

"काशी करवट कि करवत! कुख्यात
जहाँ कभी
चलते थे आरे मोक्षकामी दुर्मर जरा–जर्जर गरदनों पर
कि अब जिनके सामने ही
दिन–दिन–भर बल्कि देर रात तक
चलता रहता वीडियो गेम का कोई मनोहिंसक खेल नन्ही दुकनिया में
जिसके स्क्रीन के आगे बैठे रहते गुच्छे–के–गुच्छे बच्चे
उदग्रग्रीव व्यग्रमन
काशी–करवट के सामने काशी की नई करवट!
कहना मुश्किल दोनों में कौन ज्यादा हिंसक ज्यादा भीषण
वृद्ध–वधी अतीत कि बाल–वधी वर्तमान?"[25]

यह अनायास तो बिल्कुल नहीं है कि इक्कीसवीं सदी के दहलीज पर प्रकृति और सभ्यता के द्वंद्वस्थलों को स्थानिकता के ठोस जमीन पर वैश्विक हलचलों को भावक–चित्त से नहीं जीवन–बोध से चीन्हते और बेलगाम साम्राज्यवादी पूँजीवाद, भूमंडलीकरण और उदारीकरण के प्रतिरोध को गंगा–तट में दर्ज करने वाला कवि समय के विस्फारित और क्रूर यथार्थ से मुँह मोड़ लेता। गंगा–बीती में वे इस गांगेय–नगर को और गंगा को देखते हैं और गंगू के निगाह से देखते हैं जो अधिक निर्भीक और निष्कंप है। यही वजह है कि इसमें राजनैतिक मुखरता

की कविताएँ अधिक है। यह अधिक मुखर है, यह मन–दर्पण की नहीं आत्म–गौरव के जमीन पर युग–सत्य को परखने की कोशिश है।

"यह तो है ही संसद की मार्फत
लोकतंत्र पर बड़ी पूँजी का कब्जा है अब
लोकतंत्र बना है लाभ–लोभ–तंत्र कुछ का
सांसदों में अधिसंख्य करोड़पति या कि अरबपति हैं सीधे–सीधे
पूँजीधर अब नेपथ्य में नहीं, मंच पर हैं
नीति–रीति के निर्धारक
निर्णायक भारतीय समय के वर्तमान–भविष्य के
ऐसे में गुजर कहाँ गरीब की
आम आदमी की अहमियत ही क्या
इस समय
संदेह सब से बड़ा नैतिक अपराध, सवालकृदंडनीय नियमभंग
आन्दोलनकृराजद्रोह, जिसकी सजा कुछ भी हो सकती है
सीधी–सी बात रू गति–प्रगति के रास्ते कछुओं को आड़े नहीं आने दिया जाएगा
तोड़ दिया जाएगा कठिन पीठ का कवच
पूरी नृशंसता से, जरूरी हुआ तो, ––समझ रखिए
सँभल रहिए"[26]

इन संग्रहों के अतिरिक्त जो उनके अन्य संग्रह हैं यथा संशयात्मा में कलकत्ता और बनारस से सम्बंधित कविताएँ हैं, मनु को बनाती मनई जो कि प्रेम कविताओं और स्त्री जीवन से सम्बंधित कविताएँ हैं उनमें भी बनारस कहीं–कहीं झाँकता है। इनके नये संग्रह कविता–भविता में भी राजाराम अथवा पत्रकारिता दिवस जैसी कविताओं में भी बनारस मौजूद है। अभी साखी के तेतीसवें अंक में कोरोना सम्बंधित कविताओं में भी बनारस मौजूद है। वे राजनैतिक होते हुए भी, स्मृतियों में जाते हुए भी, महामारी से जूझते हुए भी उन सभी को दर्ज करते हैं जो दृश्य और स्थानिकता से निकलता है, वे उनमें रहते हुए भी अपर होते हैं। कहते हैं जिन्होंने अपने परिवेश को समझ लिया वे अपने परिदृश्य को समझ लेते हैं। ज्ञानेन्द्रपति अपने समय को समझने के लिए कोई लम्बी यात्रा नहीं करते, वे अपने आस–पास को, अपने नगर को देखते हैं और उसी से–उसी में अपनी अभिव्यक्ति को पाते हैं। 'अबके, नागपंचमी में' शीर्षक कविता इस बात को पुष्ट करेगी–

"नाग ले जी! नाग ले लो
बड़े गुरु का! छोटे गुरु का!
बड़ा गुरु!? नहीं नहीं!
वह तो महान वैयाकरण पाणिनि है, आज के दिन
श्अष्टाध्यायीश का रचयिता!
और जो छोटा गुरु
पतंजलि है –– श्महाभाष्यश का कर्ता!
यहाँ, बनारस के जैतपुरा में
जो अतिशय प्राचीन नागकूप है––
दरअस्ल, चारो तरफ से उतरती सीढ़ियों वाली एक बावड़ी
नागकूप विख्यात––
कायम है जिसका महातम
कहते हैं, जिसके चौकोर जल के नीचे से
पाताल को जाता एक गुप्त रास्ता है
जो पहुँचता सीधे नागलोक
यही नागकूप हैओ कर्कोटक नागतीर्थ पुराणोक्त
जिसके पावन पड़ोस में

कहते हैं, पाणिनि और पतंजलि ने रचीं अपनी अमर कृतियाँ
वह दिव्य स्थल जिसका तेज
कठिन से कठिन काल–सर्प–दोष को झट कर देता भस्मीभूत
उसी के प्राण–प्रतिनिधि आज के दिन
दुआरे–दुआरे दुरित दूर करते घूमने वाले
नन्हे–मुन्ने पाणिनि और पतंजलि
बड़े गुरु और छोटे गुरु
विद्वान् और दयावान!"[27]

समकालीन कविता का बहुलांश अपने आरम्भ से ही नागर–बोध की रही है, यह अनायास नहीं है कि ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं में नगर–चित्र बहुलांश में मौजूद है, तथापि ये कविताएँ अपनी जनपदीयता को नहीं छोड़ती जिन्हें हम कई नागर–बोध की कविता समझ रहे होते हैं वे कविताएँ अपनी जनपदीय चेतना से उसका प्रत्याख्यान रचती हैं तो कई बार अपने नगर–चित्र में एक बड़े विजन से अपने समय का वैकल्पिक पाठ तैयार करती हैं। बनारस से सम्बंधित कविताएँ सिर्फ बनारस का चित्रण भर नहीं है, वे भूमंडलीकरण का प्रत्याख्यान भी है, एक सांस्कृतिक पाठ भी है और विस्मृत होते बनारस को सुरक्षित रखने का संग्रहालय भी है। ज्ञानेन्द्रपति की रचनाओं में एक परस्परिकता के गुणसूत्र मौजूद है, जिससे उनमें एक औपन्यासिक वितान बनता है। उस खासकिस्म की न्यूक्लियस को तलाशते ही ज्ञानेन्द्रपति की रचना संवादधर्मी हो जाती हैं। उनसे पाठक का साझापन बनने लगता है। फिर तद्भव–तत्सम–देशज शब्दावली प्रचुर कविता, कविता के सौंदर्य के बढ़ाने के कारक होते हैं, उसमें बाधक नहीं। ज्ञानेन्द्रपति समय से संवाद करने वाले और तमाम केंद्रकों में हाशिए पर रह गए चीजों को दर्ज कर एक वैकल्पिक रचनाकार–चिंतक बन जाते हैं, जहां उनकी रचनाएँ सभ्यता–समीक्षा का पाठ निरंतर तैयार करती हैं।

संदर्भ

1. Nation and Village Images of Rural India in Gandhi, Nehru and Ambedkar, EPW, August 10, 2002; 3344.
2. Nation and Village Images of Rural India in Gandhi, Nehru and Ambedkar, EPW, August 10, 2002; 3344.
3. Nation and Village Images of Rural India in Gandhi, Nehru and Ambedkar, EPW, August 10, 2002; 3344.
4. सतेन्द्र कुमार, बदलता गाँव बदलता देहात, 2018, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 13
5. सतेन्द्र कुमार, बदलता गाँव बदलता देहात, 2018, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 13
6. सतेन्द्र कुमार, बदलता गाँव बदलता देहात, 2018, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 14
7. स. ही. वा. अज्ञेय, अज्ञेय रचनावली, भाग 1, सं. कृष्णदत्त पालीवाल, 2014, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 116
8. कृष्णमोहन की 11 मार्च 2021 की टिप्पणी, https://www.facebook.com/100001295464483/posts/3703057556414057/
9. राजेश जोशी, कविता का शहर, 2018, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 9
10. ज्ञानेन्द्रपति, भिनसार, 2006, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 55
11. ज्ञानेन्द्रपति, भिनसार, 2006, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 55
12. ज्ञानेन्द्रपति, भिनसार, 2006, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 49
13. देवी प्रसाद मिश्र, प्रार्थना के शिल्प में नहीं, 1989, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 46
14. ज्ञानेन्द्रपति, भिनसार, 2006, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 128
15. ज्ञानेन्द्रपति, भिनसार, 2006, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 108
16. जयप्रकाश, 'पुराणाधुनिक का अंतर्द्वंद्व' शीर्षक आलेख से
17. रविकांत, संजय शर्मा, (सं.), शहरनामा, 2005, सराय, नई दिल्ली, 383
18. ज्ञानेन्द्रपति,गंगा–बीती, 2019, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, 53
19. ज्ञानेन्द्रपति,गंगा–बीती, 2019, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, 39

20. ज्ञानेन्द्रपति,गंगा–बीती, 2019, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, 94
21. ज्ञानेन्द्रपति,गंगा–बीती, 2019, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, 9
22. ज्ञानेन्द्रपति,गंगातट, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 20
23. ज्ञानेन्द्रपति,गंगातट, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 156
24. ज्ञानेन्द्रपति,गंगा–बीती, 2019, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, 94
25. ज्ञानेन्द्रपति,गंगातट, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 154
26. ज्ञानेन्द्रपति,गंगा–बीती, 2019, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, 185
27. साखी 33, अप्रैल 2021, सं. सदानंद शाही, प्रेमचंद साहित्य संस्थान का त्रैमासिक, वाराणसी, 30
28. ज्ञानेन्द्रपति, भिनसार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
29. ज्ञानेन्द्रपति, गंगातट, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999
30. ज्ञानेन्द्रपति, संशयात्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004
31. ज्ञानेन्द्रपति, मनु को बनाती मनई, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
32. ज्ञानेन्द्रपति, गंगा–बीती, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019
33. ज्ञानेन्द्रपति, कविता–भविता, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2020
34. सतेन्द्र कुमार, बदलता गाँव बदलता देहात, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019
35. रविकांत, संजय शर्मा, शहरनामा, सराय, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005
36. साखी 33, अप्रैल 2021, सं. सदानंद शाही, प्रेमचंद साहित्य संस्थान का त्रैमासिक, वाराणसी
37. EPW, August 10, 2002

-------****-------